श्रीमद्भागवतम्

प्रथम स्कन्ध

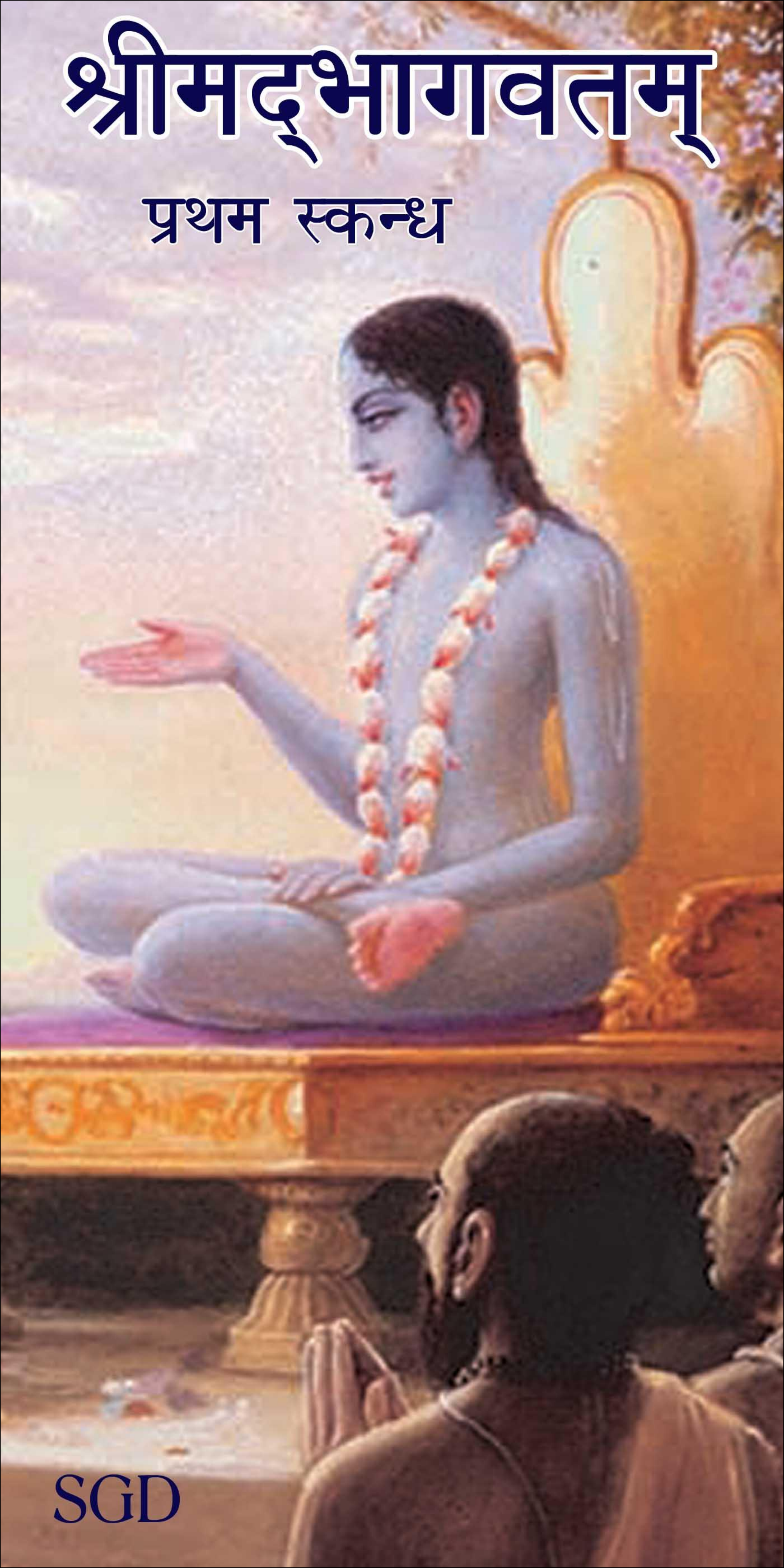

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 1

ईश अनुभूति का प्रथम सोपान

श्रीलगुरुदेव

ईश-स्तवन: हे सर्वव्यापी भगवन्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

श्लोक 1: श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, आपका प्रश्न महिमामय है, क्योंकि यह समस्त प्रकार के लोगों के लिए बहुत लाभप्रद है। इस प्रश्न का उत्तर श्रवण करने का प्रमुख विषय है और समस्त अध्यात्मवादियों ने इसको स्वीकार किया है।

श्लोक 2: हे सम्राट, भौतिकता में उलझे उन व्यक्तियों के पास जो परम सत्य विषयक ज्ञान के प्रति अंधे हैं, मानव समाज में सुनने के लिए अनेक विषय होते हैं।

श्लोक 3: ऐसे ईर्ष्यालु गृहस्थ (गृहमेधी) का जीवन रात्रि में या तो सोने या मैथुन में रत रहने तथा दिन में धन कमाने या परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण में बीतता है।

श्लोक 4: आत्मतत्त्व से विहीन व्यक्ति जीवन की समस्याओं के विषय में जिज्ञासा नहीं करते, क्योंकि वे शरीर, बच्चे तथा पत्नी रूपी विनाशोन्मुख सैनिकों के प्रति अत्यधिक आसक्त

रहते हैं। पर्याप्त अनुभवी होने के बावजूद भी वे अपने अवश्यंभावी मृत्यु को नहीं देख पाते।

श्लोक 5: हे भरतवंशी, जो समस्त कष्टों से मुक्त होने का इच्छुक है उसे उन भगवान् का श्रवण, महिमा-गायन तथा स्मरण करना चाहिए जो परमात्मा, नियंता तथा समस्त कष्टों से रक्षा करने वाले हैं।

श्लोक 6: पदार्थ तथा आत्मा के पूर्ण ज्ञान से, योगशक्ति से या स्वधर्म का भलीभाँति पालन करने से मानव जीवन की जो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, वह है जीवन के अन्त में भगवान् का स्मरण करना।

श्लोक 7: हे राजा परीक्षित, मुख्यतया सर्वोच्च अध्यात्मवादी, जो विधि-विधानों एवं प्रतिबन्धों से ऊपर हैं, भगवान् का गुणगान करने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

श्लोक 8: द्वापर युग के अन्त में अपने पिता श्रील द्वैपायन व्यासदेव से मैंने श्रीमद्भागवत नाम के इस महान् वैदिक साहित्य के अनुपूरक ग्रंथ का अध्ययन किया, जो समस्त वेदों के तुल्य है।

श्लोक 9: हे राजर्षि, मैं दृढ़तापूर्वक अध्यात्म में पूर्ण रूप से स्थित था तथापि मैं उन भगवान् की लीलाओं के वर्णन के प्रति आकृष्ट हुआ,

जिनका वर्णन उत्तम श्लोकों द्वारा किया जाता है।

श्लोक 10: मैं उसी श्रीमद्भागवत को आपको सुनाने जा रहा हूँ, क्योंकि आप भगवान् कृष्ण के अत्यन्त निष्ठावान भक्त हैं। जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत को पूरे मनोयोग से तथा सम्मानपूर्वक सुनता है, उसे मोक्षदायक परमेश्वर की अविचल श्रद्धा प्राप्त होती है।

श्लोक 11: हे राजन्, महापुरुषों का अनुगमन करके भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन उन समस्त लोगों के लिए सफलता का नि:संशय तथा निर्भीक मार्ग है, जो समस्त भौतिक

इच्छाओं से मुक्त हैं, अथवा जो समस्त भौतिक भोगों के इच्छुक हैं और उन लोगों के लिए भी, जो दिव्य ज्ञान के कारण आत्मतुष्ट हैं।

श्लोक 12: ऐसे दीर्घ जीवन से क्या लाभ, जिसे इस संसार में वर्षों तक अनुभवहीन बने रहकर गँवा दिया जाये? इससे तो अच्छा है पूर्ण चेतना का एक क्षण, क्योंकि इससे उसके परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

श्लोक 13: राजर्षि खट्वांग को जब यह सूचना दी गई कि उनकी आयु का केवल एक क्षण (मुहूर्त) शेष है, तो उन्होंने तुरन्त अपने आपको समस्त

भौतिक कार्यकलापों से मुक्त करके परम रक्षक भगवान् की शरण ले ली।

श्लोक 14: हे महाराज परीक्षित, अब आपकी आयु के और सात दिन शेष हैं। अतएव इस अवधि में आप उन समस्त अनुष्ठानों को सम्पन्न कर सकते हैं, जो आपके अगले जीवन के परम कल्याण के लिए आवश्यक हैं।

श्लोक 15: मनुष्य को चाहिए कि जीवन के अन्तकाल में मृत्यु से तनिक भी भयभीत न हो, अपितु वह भौतिक शरीर से तथा उससे सम्बन्धित सारी वस्तुओं एवं उसकी समस्त इच्छाओं से अपनी आसक्ति तोड़ ले।

श्लोक 16: मनुष्य को घर छोड़ करके आत्मसंयम का अभ्यास करना चाहिए। उसे तीर्थस्थानों में नियमित रूप से स्नान करना चाहिए और ठीक से शुद्ध होकर एकान्त स्थान में आसन जमाना चाहिए।

श्लोक 17: मनुष्य उपर्युक्त विधि से आसन जमा कर, मन को तीन दिव्य अक्षरों (अ, उ, म्) का स्मरण कराये और श्वास-विधि को नियमित करके मन को वश में करे, जिससे वह दिव्य बीज को नहीं भूले।

श्लोक 18: धीरे-धीरे जब मन उत्तरोत्तर आध्यात्मिक हो जाय, तो उसे इन्द्रिय-कार्यों से खींच लिया

जाय (विलग कर लिया जाय)। इससे इन्द्रियाँ बुद्धि द्वारा वशीभूत हो जायेंगी। इससे भौतिक कार्य- कलापों में लीन मन भी भगवान् की सेवा में प्रवृत्त किया जा सकता है और पूर्ण दिव्य भाव में स्थिर हो सकता है।

श्लोक 19: तत्पश्चात्, श्रीविष्णु के पूर्ण शरीर की अव-धारणा को हटाये बिना, एक-एक करके विष्णु के अंगों का ध्यान करना चाहिए। इस तरह मन समस्त इन्द्रिय-विषयों से मुक्त हो जाता है। तब चिन्तन के लिए कोई अन्य वस्तु नहीं रह जानी चाहिए। चूँकि भगवान् विष्णु परम सत्य हैं,

अतएव केवल उन्हीं में मन पूर्ण रूप से रम जाता है।

श्लोक 20: मनुष्य का मन सदैव रजोगुण द्वारा विचलित और तमोगुण द्वारा मोहग्रस्त होता रहता है। किन्तु मनुष्य ऐसी धारणाओं को भगवान् विष्णु के सम्बन्ध द्वारा ठीक कर सकता है और इस तरह उनसे उत्पन्न गंदी वस्तुओं को स्वच्छ करके शान्त बन सकता है।

श्लोक 21: हे राजन्, स्मरण की इस पद्धति से तथा भगवान् के कल्याणप्रद साकार-स्वरूप का दर्शन करने के अभ्यास में स्थिर होने से, मनुष्य भगवान् के प्रत्यक्ष आश्रय के अन्तर्गत

उनकी भक्ति को शीघ्र ही प्राप्त कर सकता है।

श्लोक 22: सौभाग्यशाली राजा परीक्षित ने आगे पूछा : हे ब्राह्मण, कृपा करके विस्तार से यह बतायें कि मन को कहाँ और कैसे लगाया जाये? और धारणा को किस तरह स्थिर किया जाय कि मनुष्य के मन का सारा मैल हटाया जा सके?

श्लोक 23: शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया : मनुष्य को चाहिए कि आसन को नियन्त्रित करे, यौगिक प्राणायाम द्वारा श्वास-क्रिया को नियमित करे और इस तरह मन तथा इन्द्रियों को वश में करे। फिर बुद्धिपूर्वक मन को

भगवान् की स्थूल शक्तियों (विराट रूप) में लगाये।

श्लोक 24: सम्पूर्ण व्यवहार-जगत की यह विराट अभिव्यक्ति परम सत्य का साक्षात् शरीर है, जिसमें ब्रह्माण्ड के भूत, वर्तमान एवं भविष्य का अनुभव किया जाता है।

श्लोक 25: भौतिक तत्त्वों के द्वारा सात प्रकार से प्रच्छन्न ब्रह्माण्डीय खोल (आवरण) रूपी शरीर के भीतर भगवान् का विराट ब्रह्माण्डीय स्वरूप विराट धारणा का विषय है।

श्लोक 26: जिन पुरुषों ने इसकी अनुभूति की है, उन्होंने यह अध्ययन किया है कि पाताल लोक विराट पुरुष

के पाँवों के तलवे हैं तथा उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल लोक हैं। टखने महातल लोक हैं तथा उनकी पिंडलियाँ तलातल लोक हैं।

श्लोक 27: विश्व-रूप के घुटने सुतल नामक लोक हैं तथा दोनों जाँघें वितल तथा अतल लोक हैं। कटि-प्रदेश महीतल है और उसकी नाभि का गड्ढा बाह्य अन्तरिक्ष है।

श्लोक 28: विराट रूप वाले आदि पुरुष की छाती ज्योतिष्क (स्वर्ग) लोक है, उसकी गर्दन महर्लोक है, उसका मुख जन:लोक है और उसका मस्तक तप:लोक है। सर्वोच्च लोक, जिसे सत्यलोक कहते हैं, एक हजार

सिरों (मस्तिष्कों) वाले उनआदि पुरुष का सिर है।

श्लोक 29: इन्द्र इत्यादि देवता उस विराट पुरुष की बाँहें हैं, दसों दिशाएँ उसके कान हैं और भौतिक ध्वनि उसकी श्रवणेन्द्रिय है। दोनों अश्विनीकुमार उसके नथने हैं तथा भौतिक सुगंध उसकी घ्राणेन्द्रिय है। उसका मुख प्रज्ज्वलित अग्नि है।

श्लोक 30: बाह्य अन्तरिक्ष उसकी आँखों के गड्ढे हैं तथा देखने की शक्ति के लिए सूर्य नेत्र-गोलक हैं। दिन तथा रात पलकें हैं और उसकी भृकुटि की गतियों में ब्रह्मा तथा अन्य महापुरुषों का निवास होता है। जल

का अधीश्वर वरुण उसका तालु तथा सभी वस्तुओं का रस या सार उसकी जीभ है।

श्लोक 31: वे कहते हैं कि वैदिक स्तोत्र भगवान् के मस्तक हैं और मृत्यु का देवता तथा पापियों को दण्ड देनेवाला यम उनकी दाढ़ें हैं। स्नेह की कला ही उनके दाँत हैं और सर्वाधिक मोहिनी माया ही उनकी मुस्कान है। यह भौतिक सृष्टि रूपी महान् सागर उनकी चितवन स्वरूप है।

श्लोक 32: लज्जा भगवान् का ऊपरी होठ है, लालसा उनकी ठुड्डी है, धर्म उनका वक्ष:स्थल तथा अधर्म उनकी पीठ है। भौतिक जगत में समस्त जीवों

के जनक ब्रह्मा जी उनकी जननेन्द्रिय (लिंग) हैं और मित्रा-वरुण उनके दोनों अण्डकोश हैं। सागर उनकी कमर है और पर्वत उनकी अस्थियों के समूह हैं।

श्लोक 33: हे राजन्, नदियाँ उस विराट शरीर की नसें हैं, वृक्ष रोम हैं और सर्वशक्तिमान वायु उनकी श्वास है। व्यतीत होते हुए युग उनकी गति तथा प्रकृति के तीनों गुणों की प्रतिक्रियाएँ ही उनके कार्यकलाप हैं।

श्लोक 34: हे कुरुश्रेष्ठ, जल ले जानेवाले बादल उनके सिर के बाल हैं, दिन या रात्रि की सन्धियाँ ही उनके वस्त्र हैं तथा भौतिक सृष्टि का

परम कल्याण ही उनकी बुद्धि है। चन्द्रमा ही उनका मन है, जो समस्त परिवर्तनों का आगार है।

श्लोक 35: पदार्थ का सिद्धान्त (महत्-तत्त्व) सर्वव्यापी भगवान् की चेतना है, जैसा कि विद्वानों ने बल देकर कहा है तथा रुद्रदेव उनका अहंकार है। घोड़ा, खच्चर, ऊँट तथा हाथी उनके नाखून हैं तथा जंगली जानवर और सारे चौपाये भगवान् के कटि-प्रदेश में स्थित हैं।

श्लोक 36: विभिन्न प्रकार के पक्षी उनकी दक्ष कलात्मक रुचि के सूचक हैं। मानवजाति के पिता, मनु, उनकी आदर्श बुद्धि के प्रतीक हैं और

मानवता उनका निवास है। गन्धर्व, विद्याधर, चारण तथा देवदूत जैसी दैवी योनियाँ उनके संगीत की स्वर-लहरी को व्यक्त करती हैं और आसुरी सैनिक उनकी अद्भुत शक्ति के प्रतिरूप हैं।

श्लोक 37: विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण है, उनकी भुजाएँ क्षत्रिय हैं, उनकी जाँघें वैश्य हैं तथा शूद्र उनके चरणों के संरक्षण में हैं। सारे पूज्य देवता उनमें सन्निहित हैं और यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यथासम्भव वस्तुओं से यज्ञसम्पन्न करे।

श्लोक 38: इस प्रकार मैंने आपको भगवान् के स्थूल भौतिक विराट स्वरूप की अवधारणा का वर्णन किया। जो व्यक्ति सचमुच मुक्ति की इच्छा करता है, वह भगवान् के इस स्वरूप पर अपने मन को एकाग्र करता है, क्योंकि भौतिक जगत में इससे अधिक कुछ भी नहीं है।

श्लोक 39: मनुष्य को अपना मन भगवान् में एकाग्र करना चाहिए, क्योंकि वे ही अपने को इतने सारे रूपों में उसी तरह वितरित करते हैं, जिस तरह कि सामान्य मनुष्य स्वप्न में हजारों रूपों की सृष्टि करता है। मनुष्य को अपना मन एकमात्र सर्व

आनन्दमय परम सत्य पर एकाग्र करना चाहिए अन्यथा वह पथभ्रष्ट हो जायेगा और अपने हाथों ही अपना पतन कर लेगा।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव